• श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः •

स वै पुसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

श्रीभागवत-पत्रिका

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः ।
नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मासुप्रसीदति ।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो श्रम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १४ | गौराब्द ४८२, मास—माधव ११, वार—प्रद्युम्न
मंगलवार, ३० पौष, सम्वत् २०२५, १४ जनवरी १९६९ | संख्या ८

श्रीललिताष्टकम्

[श्रीश्रील रूप गोस्वामि-विरचितम्]

राधामुकुन्दपदसम्भवघर्म-तिमंञ्छनोपकरणीकृतदेहलक्षाम् ।
उत्तुङ्गसौहृदविशेषवशात् प्रगल्भां देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि ॥१॥

श्रीराधामुकुन्दके पदारविन्दोंके चूते हुए पसीनेके बिन्दुओंको उतारनेरूपी उपकारमें जिनका शरीर नियुक्त है तथा परमोन्नत सौहार्द रसमें सराबोर रहनेके कारण जो सर्वदा अवश रहती हैं, उन्हीं सौन्दर्य और गांभीर्य आदि विभिन्न गुणोंसे युक्त मनोहारिणी प्रगल्भा श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ ॥१॥

राकासुधाकिरणमण्डलकान्तिदण्डि-तुण्डश्रियं चकितचारुचमूरुनेत्राम् ।
राधाप्रसाधनविधानकलाप्रसिद्धां, देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि ॥२॥

जिनके श्रीमुखमण्डलकी शोभा पूर्णचन्द्रकी कान्तिका भी तिरस्कार करती है, जिनके नेत्र-युगल चकित हिरणोंके नेत्रोंके समान अत्यन्त चञ्चल हैं और जो

श्रीमती राधिकाकी वेश-रचनाकी कलामें अतिशय प्रसिद्धा हैं, उन्हीं निखिल स्त्रीजनोचित गुणराशिसम्पन्ना श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ ॥२॥

लास्योल्लसद्भुजगशत्रुपतत्रचित्र,-पट्टांशुकाभरणकञ्चुलिकाञ्चिताङ्गीम् ।
गोरोचनारुचि-विगर्हणगौरिमाणं, देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि ॥३॥

उद्दण्ड नृत्यमें अत्यधिक उल्लसित मयूरके विचित्र रंगोंवाले पंखों जैसे रेशमी लहंगे, दुपट्टे और कंचुका आदि द्वारा जिनका शरीर अत्यन्त सुशोभित है, तथा जो अपने अंगोंकी गौरकान्ति-द्वारा गोरोचनाकी दीप्तिको भी पराभूत करती हैं, उन्हीं असीम गुणसम्पन्ना श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ ॥३॥

धूर्ते व्रजेन्द्रतनये तनु सुष्ठु वाम्यं, मा दक्षिणा भव कलंकिनि ! लाघवाय ।
राधे ! गिरं शृणु हितामिति शिक्षयन्तीं, देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि ॥४॥

हे कलंकिनी राधिके ! मेरी हितकर बातें सुनो—'तुम अति धूर्त्त व्रजेन्द्रनन्दनके प्रति उदारता प्रदर्शित न करो'—इस प्रकार जो श्रीमती राधिकाको शिक्षा देती हैं, उन्हीं सर्वगुणसम्पन्ना श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ ॥४॥

राधामभि व्रजपतेः कृतमात्मजेन, कूटं मनागपि विलोक्य विलोहिताक्षीम् ।
वाग्भङ्गिभिस्तमचिरेण विलज्जयन्तीं, देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि ॥५॥

श्रीमती राधिकाके प्रति श्रीकृष्णकी थोड़ी-सी भी चतुरतापूर्ण बातोंको सुनकर क्रोधित-सी होकर जो "आप बड़े सत्यवादी सरल हैं, विशुद्ध प्रणयी हैं"—इत्यादि व्यंग भरे बचनोंसे श्रीकृष्णको लज्जित करती हैं, उन्हीं सर्वगुणसम्पन्ना श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ ॥५॥

वात्सल्यवृन्दवसतिं पशुपालराज्ञ्याः, सख्यानुशिक्षणकलासुगुरुं सखीनाम् ।
राधाबलावरजजीवितनिर्विशेषां, देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि ॥६॥

जो पशुपाल (श्रीनन्द) राजमहिषी श्रीयशोदादेवीके वात्सल्यरसकी खान हैं, जो सम्पूर्ण सखीवर्गको नृत्य, गीत, वाद्य एवं सख्यविषयक विविध प्रकारकी शिक्षाएँ प्रदान करनेवाली गुरु हैं तथा श्रीराधिका एवं बलदेवानुज श्रीकृष्ण जिनके जीवन स्वरूप हैं, उन्हीं सकल गुणोंकी खान श्रीललितादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ ॥६॥

यां कामपि व्रजकुले वृषभानुजायाः, प्रेक्ष्य स्वपक्षपदवी मनुरुध्यमानाम् ।
सद्यस्तदिष्टघटनेन कृतार्थयन्तीं, देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि ॥७॥

व्रजमें कहीं भी किसी भी युवतीको देखते ही उसे वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका-पक्षीय जानकर उसी समय उसके मनोभिलषित कार्य समूहको सम्पन्न करके जो कृतार्थ करती हैं, उन्हीं सर्वगुणसम्पन्ना श्रीललितादेवीको मैं नमस्कार करता हूँ ।।७।।

राधाव्रजेन्द्रसुतसंगमरंगचर्यां वर्यां विनिश्चितवतीमखिलोत्सवेभ्यः ।
तां गोकुल प्रियसखी निकुरम्बमुख्यां, देवीं गुणैः सुललितां ललितां नमामि ॥८॥

श्रीश्रीराधामाधवके सम्मिलनमें विनोदन क्रिया ही जिनका सर्वश्रेष्ठ कार्य है तथा दूसरे-दूसरे निखिल उत्सवोंसे बढ़कर उस विनोदन क्रियामें ही जिनकी अत्यधिक स्पृहा है, उन्हीं गोकुलकी प्रिय सखियोंमें प्रधानतमा और सकल गुणोंकी आश्रय-स्वरूपा श्रीललितादेवीको नमस्कार करता हूँ ।।८।।

नन्दन्नमूनि ललितागुणलालितानि, पद्यानि यः पठति निर्मल दृष्टिरष्टौ ।
प्रीत्या विकर्षति जनं निजवृन्दमध्ये, तं कीर्त्तिदापतिकुलोज्ज्वलकल्पवल्ली ।।९।।

जो व्यक्ति विशुद्ध अन्तःकरणसे आनन्दित होकर (प्रेमके साथ) लालित्य गुणोंसे सुललित, श्रीललितादेवीके इस पद्याष्टकका पाठ करते हैं, श्री कीर्तिदापति वृषभानु महाराजके कुलकी उज्ज्वल कल्पलता-स्वरूपा वे श्रीमती राधिकाजी प्रीति-पूर्वक उन्हें आकर्षण करके अपनी सखीवृन्दके अन्तर्गत अंगीकार कर लेती हैं ।।९।।

शिक्षक और शिक्षित

जो व्यक्ति शिक्षा प्रदान करनेमें कुशल हैं, वे ही शिक्षक कहलाने योग्य हैं। जो व्यक्ति शिक्षकसे सहज रूपमें शिक्षा प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हैं, वे व्यक्ति ही शिक्षा (परमार्थ) के अधिकारी हैं। जो व्यक्ति स्थिर चित्तसे श्रवण करते हैं और श्रुत-विषयको ग्रहण कर अपनी सभी इन्द्रियोंको विपरीत रुचिको दमन करनेमें समर्थ होते हैं, वे ही शिक्षित हैं।

जब शिक्षित व्यक्ति शिक्षा ग्रहण करने की इच्छासे शिक्षकके निकट उपस्थित होता है, तब उसे नाना प्रकारकी बाधाओंका सामना करना पड़ता है। जब शिक्षा लाभ करनेवाला व्यक्ति श्रद्धारहित हो और शिक्षककी शिक्षा-नीति के प्रति अश्रद्धा प्रकाश करें, तब वह शिक्षकको शिक्षादान करनेमें अयोग्य समझता है। अतएव उन्हें वह शिक्षकके रूपमें वरण करनेमें असमर्थ है। जहाँ कपटता द्वारा ऐसा शिक्षक वरण करनेका अभिनय देखा जाता है, वहाँ अनवधानताके कारण वे विपरीत चिन्ता किया करते हैं। शिक्षककी वाणी उनके कानों में प्रवेश नहीं कर पाती। यद्यपि शब्दाकारसे शिक्षक द्वारा कहे गए शब्द उनके कर्ण-प्रान्तमें प्रविष्ट होते हैं, किन्तु उनकी अन्यमनस्कताके कारण विपरीत चिन्ताधारा पूर्व अज्ञानताके द्वारा प्रबल होकर वस्तु-उपलब्धिके प्रवेशद्वार को बन्द कर देता है। और जहाँ किसी नई बात द्वारा नवीन ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं, वहाँ पूर्वसंचित विपरीत ज्ञान बाधा प्रदान करता है; इस प्रकार शिक्षककी मान-मर्यादाको हानि पहुँचती है। शिक्षार्थीके इन बाधा-समूहोंको पारमार्थिक व्यक्ति "अनर्थ" कहते हैं। आवश्यक विषयकी अवहेलना करते हुए अप्रयोजनीय विषय को "अर्थ" समझनेके कारण यथार्थ ज्ञानकी उपलब्धिमें बाधा उपस्थित होती है। विप्र-लिप्सा (वंचना करनेकी इच्छा) नामक कपटता कई समय शिक्षार्थीको शिक्षककी शिक्षामें थोड़ा बहुत प्रवेशाधिकार प्रदान कर उनके (शिक्षकके) प्रतिकूल विषय समूहोंमें आकर्षित कर लेती है।

हमारे शास्त्रोंमें शिक्षा गुरुकी बात कही गई है। ऐसे शिक्षा गुरु अबोध व्यक्तियोंको जो सभी शिक्षायें प्रदान करते हैं, जड़ जगतके शिक्षक कहलानेवाले व्यक्ति उस शिक्षा-सम्पत्तिके अधिकारी नहीं हैं। इन्द्रियज ज्ञान द्वारा भोगोंकी परितृप्तिके लिए जो शिक्षा अर्जित की जाती है, जगतके शिक्षक नामधारी व्यक्ति वही शिक्षा अबोध व्यक्तियोंको अपने

शिष्य होने योग्य समझ कर दिया करते हैं। बहुतसे व्यक्ति अपनेको शिक्षार्थीका अभिमान करते हुए अशिक्षित व्यक्तिको शिक्षा गुरुके रूपमें वरण करते हैं। ऐसे असत् स्वभाव-सम्पन्न गुरु भी ऐसे वंचित शिक्षार्थीके निकट आत्मसमर्पण कर उसकी वंचना करते रहते हैं। इस श्रेणीके वंचक शिक्षक और वंचित शिक्षार्थी—इन दोनोंकी ही जो दुर्गति होती है, उसे निरपेक्ष विचारसम्पन्न व्यक्तिमात्र ही अनुभव कर सकते हैं। शठता स्वभाव-सम्पन्न शिक्षार्थी लांम्पट्य दोष द्वारा दूषित है; ऐसे इन्द्रिय सुखोंमें मदमत्त हिताहित विवेक-शून्य व्यक्ति अपनी-अपनी रुचिके अधीन होकर उन-उन विषयोंमें पारदर्शी कपट गुरुओं (असत गुरुओंको) शिक्षा गुरुके रूपमें वरण कर विषय जालमें फँस जाते हैं।

इसीलिए कलियुगपावनावतारी श्री चैतन्य महाप्रभुने कृष्णतत्वविद्को ही गुरुके रूपमें वरण करनेका उपदेश दिया है। जो सभी व्यक्ति कृष्ण-सेवा विमुख होकर जड़ जगतका प्रभुत्व पानेकी लालसा रखते हैं, ऐसे भोगी व्यक्ति कदापि शिक्षा गुरु बनने योग्य नहीं हैं। उनके निकट शिक्षा प्राप्त करने से शिष्यकी भी किसी प्रकारसे मंगल होनेकी सम्भावना नहीं है। जो व्यक्ति जागतिक भोगों से घृणा करते हुए एक निर्विशेष अवस्थाकी कल्पना करते हुए अपनेको 'मुक्त' अभिमान करते हैं, वे भी व्यतिरेक रूपसे भोगी ही कहलाने योग्य हैं।

जो व्यक्ति इन सभी सूक्ष्म विषयोंमें प्रवेश कर अपने आत्म-स्वरूपको थोड़े भी परिमाण में अनुभव करनेमें समर्थ हुए हैं, वे कृष्णतत्व-विद् शिक्षा गुरु का अनुसंधान करते हैं। अन्तर्यामी रूपसे चैत्य शिक्षक भगवान महान्त शिक्षक गुरुदेवको आदर करनेकी शिक्षा प्रदान करते हैं। चैत्य शिक्षक भगवान गौर-सुन्दर बद्ध जीवकी योग्यताके तारतम्यसे जो व्यक्ति जिस परिमाणमें अनर्थों से मुक्त है, उसे उसी परिमाणमें महान्त शिक्षकके निकट उपदेश प्राप्त करनेका सुयोग प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति भगवान को वंचित कर अपनी भोग लालसाको चरितार्थ करनेके लिए या अपने त्याग करनेकी बहादुरीसे शान्ति प्राप्त करनेके लिए व्यस्त हैं—भुक्ति व मुक्तिरूपी पिशाचियों द्वारा ग्रस्त ऐसे बद्ध जीवोंको चेतनता प्रदान कर शुद्ध भक्ति-धर्मकी शिक्षाकी आवश्यकता बोध कराते हैं। प्राकृत सहजिया लोग अपनी स्वार्थपरायणताके कारण श्रीचैतन्य महा-प्रभुकी अहैतुकी करुणा प्राप्त करनेसे वंचित रह जाते हैं और अपनी मनोकल्पित धारणा को ही श्रीचैतन्य महाप्रभुका मत समझते हुए शिक्षक वरण करनेमें भ्रान्त हो जाते हैं। यह उन लोगोंकी सुकृतिके अभावका बोधक मात्र है। श्री चैतन्य महाप्रभुके अन्तरंग भक्त लोग उत्तम शिक्षा गुरु प्राप्त करते हैं। भगवानकी बहिरंगा शक्ति द्वारा रचित मायिक जगतके भोगोंमें मदमत्त व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञानको ही श्रेष्ठ समझ कर प्राकृत सहजियाको शिक्षा गुरुके

रूपमें वरण करते हैं और शुद्धभक्तिके शिक्षार्थी के प्रति अयथा आक्रमण प्रकाश करते हैं। यह उनकी मायाबद्धता द्वारा उत्पन्न स्वभाव जानना चाहिये। जिस प्रकार पित्तसे आक्रान्त जिह्वा के लिए मिश्री स्वादिष्ट और रोगनाशक मालूम नहीं होती, उसी प्रकार प्राकृत सहजिया गुरुके शिष्य लोग अपनी विद्वाभक्तिको ही अपने मंगलका उपाय समझते हैं। प्रेय:पन्थी प्राकृत सहजिया लोग शिक्षागुरुके श्रेय:पथका आदर नहीं करते। परिणामस्वरूप जगतमें हरिभक्ति अत्यन्त दुर्लभ हो गई है।

शिक्षकके अभावके कारण कुशिक्षक व्यक्तियोंने कपटतापूर्वक अपना परिचय शिक्षकके रूपमें देकर जगतमें महान अनर्थ उपस्थित किया है। इस प्रकारसे उन लोगोंने जगतको भुक्ति-मुक्ति-पिशाचीके कवलमें फेंक दिया है। परम करुणावतारी श्री गौरसुन्दर जीवकुलका उद्धार करनेके लिए अपने निज-जनोंको निरपेक्ष रूपसे शुद्ध भक्ति-धर्मका प्रचार करनेके लिए जगतमें प्रेरित करते हैं। उस समय प्रकृति अपना विक्रम प्रकाश कर भाग्यहीन जीवके चित्तको विक्षिप्त करती हैं और सत्-असत् विचारको आवरण करती हैं। शिक्षागुरु जीवकुलको वास्तव-शिक्षा प्रदान करते हैं और भाग्यहीन असत् व्यक्ति हरि विमुख व्यक्तियोंका आदर कर उन्हें शिक्षकके रूपमें वरण करते हैं। इसलिये शिक्षार्थी शिक्षकके निकट कैसी शिक्षा ग्रहण करेंगे, इसका निश्चय न कर जो व्यक्ति शिक्षा ग्रहण का अभिनय करते हैं, वे वंचक अथवा वंचित हैं।

— जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद श्रीलसरस्वती ठाकुर

कृष्ण की रूप माधुरी

मोहन के मुख ऊपर वारी।
देखत नैन सबै सुख उपजत, बार बार तातैं बलिहारो॥
ब्रह्मा बाल बछरुआ हरि गयो, सो ततछन सारिखे सँवारी।
कीन्हौं कोप इन्द्र बरषारितु, लीला लाल गोवर्धन धारी॥
राखी लाज समाज माहिं जब, नाथ नाथ द्रौपदी पुकारी।
तीनि लोक के ताप-निवारन, सूर स्याम सेवक सुखकारी॥

प्रश्नोत्तर

(अभिधेय-तत्व)

१—समस्त शास्त्रोंका अभिधेय क्या है ?

"मैं कौन हूँ ? यह जड़ विश्वब्रह्माण्ड क्या है ? भगवानका स्वरूप क्या है ? और मुझमें और भगवानमें परस्पर क्या सम्बन्ध है ? —इन चार प्रश्नोंका सम्यक् प्रकारसे उत्तर प्राप्त करने पर सम्बन्ध-ज्ञान पूर्ण होता है। सम्बन्ध-ज्ञान प्राप्त व्यक्ति का क्या कर्त्तव्य है, यह जानकर उस कर्त्तव्यका पालन करना ही समस्त शास्त्रों का अभिधेय है।"

—अ. प्र. भा. ७।१४६

२—"अभिधेय-तत्व" किसे कहते हैं ?

"सच्चरित्रताके साथ कृष्णानुशीलन करना ही अभिधेय तत्वका मुख्य लक्षण है। यह तत्व वेद, उपनिषद्, पुराण आदि सभी शास्त्रोंमें प्रबल रूपसे वर्णित होनेके कारण श्रीमन्महाप्रभुजीने इसे अभिधेय-तत्व कहा है।"

—जैव. ध. ४था अ.

३—क्या बिना साधनके बद्ध जीवकी सिद्धि-प्राप्तिकी संभावना है ?

"बद्ध जीवोंके लिए भजन-साधन आदि कार्यकी उपेक्षा करना सर्वथा अनुचित है। उन्हें बड़े ही यत्नपूर्वक इस कार्यमें तत्पर रहना चाहिये। जो व्यक्ति आदर-पूर्वक जिस परिमाणमें शुद्ध रूपसे साधन करेंगे, सिद्धि भी उसी परिमाणमें उनके लिए सहज-प्राप्य होगी।"

—'साधन', स. तो. ११।५

४—किस प्रकारसे जीव और ईश्वरका नित्य सम्बन्ध प्रकाशित होता है ?

"जीव और ईश्वरमें एक अत्यन्त निगूढ़ प्रेम सम्बन्ध है। रागके उदय होने पर उस सम्बन्धका परिचय पाया जाता है। वह सम्बन्ध नित्य है; किन्तु जड़बद्ध होनेके कारण जीवोंके लिए वह गुप्त हो पड़ा है। दियासलाईके घिसनेसे अथवा दो चकमक पत्थरोंके परस्पर रगड़नेसे जिस प्रकारसे आग प्रगट हो जाती है, उसी प्रकार साधन करने पर यह सम्बन्ध प्रकाशित होता है।"

—चै. शि. १।१

५—सेवा किसे कहते हैं ?

"कृष्णानुशीलन ही एकमात्र भक्ति क्रिया है; मुक्त अवस्थामें उसे ही सेवा कहा जाता है।"

—त. सू. ३३ सू.

६—भक्तियोग कितने प्रकारका है ?

"भक्तियोग दो प्रकार का है—(१) श्रवण-कीर्तन आदि रूप मुख्य भक्तियोग और (२) श्रीकृष्णमें अर्पित निष्काम कर्मरूप गौण भक्तियोग।"

—र. र. भा. २।४१

७—कर्म मार्गीय गौण भक्ति पथ क्या है ?

"वर्णाश्रमाचार अनुष्ठानके द्वारा हरि-तोषण-व्रत ही कर्म मार्गीय गौण भक्ति पथ है।"

—'नाम माहात्म्य-सूचना', ह. चि.

८—स्वरूपसिद्धा भक्तिका क्या लक्षण है ?

"केवल वर्णाश्रम धर्म-पालन करनेकी अपेक्षा भगवानके लिए कर्मार्पण करना श्रेष्ठ है; केवल कर्मार्पणकी अपेक्षा स्वधर्म-त्याग अर्थात् अपने वर्णधर्म त्यागपूर्वक संन्यास-ग्रहण श्रेष्ठ है; उसकी अपेक्षा ब्रह्मानुशीलनरूप ज्ञानमिश्रा भक्ति श्रेष्ठ है। किन्तु ये चारों ही क्रम भक्तिके मुख्य सोपान नहीं हैं; क्योंकि इन चारों प्रकार के विचारोंमें साध्य वस्तुरूपा शुद्धा भक्ति की बात नहीं है। आरोपसिद्धा भक्ति और संगसिद्धा भक्ति—ये दोनों ही कदापि शुद्धा भक्ति नहीं कहे जा सकते। स्वरूप-सिद्धा भक्ति इनसे एक पृथक् तत्व है, जो कर्म, कर्मार्पण, कर्मत्यागरूप संन्यास और ज्ञानमिश्रा भक्तिसे नित्यकाल ही पृथक् है। शुद्ध-भक्तिका लक्षण इस प्रकारसे वर्णित है—अन्याभिलाषिताशून्य, ज्ञान-कर्मादिके द्वारा अनावृत, आनुकूल्यताके साथ कृष्णानुशीलन ही उत्तमा भक्तिका स्वरूप लक्षण है। यही साध्य वस्तु है, क्योंकि साधनावस्थामें इसे प्रत्यक्ष नहीं देख पाने पर भी सिद्धावस्थामें यह निर्मल रूपसे लक्षित होती है।"

—अ. प्र. भा. म ८।६८

९—महाजनका पथ किसे कहते हैं ?

"व्यास, शुक, प्रह्लादादि बारह महाजन तथा श्री चैतन्यमहाप्रभु और उनके पार्षद भक्तोंने जो पथ प्रदर्शन किया है, उसे ही "महाजन-पन्था" कहते हैं। उस पथका परित्याग कर हम लोग आजकलके अर्वाचीन भक्त नामधारियोंके उपदेश सुननेके लिए बाध्य नहीं हैं।"

—प्रजल्प, स. तो. १०।१०

१०—क्या परमार्थका पथ नित्य-नूतन प्रकारसे रचित हो सकता है ?

"परमार्थका पथ कदापि बदला नहीं जा सकता; जो पथ सनातन कालसे वर्तमान है, उसीका साधु-वैष्णव लोग अवलम्बन करते हैं। जो व्यक्ति नितान्त दाम्भिक और यशोलिप्सु है, वे ही नूतन मार्ग आविष्कार करनेका बहुत प्रयास करते हैं। जिनकी कुछ पूर्व सुकृति है, वे दाम्भिकताका परित्याग कर पूर्व पथका समादर करते हैं। जिनका भाग्य अत्यन्त

मन्द है, वे नवीन पथके अभिभावक बनकर जगतकी वंचना करते रहते हैं।"

"तत्तत् कर्मप्रवर्त्तन", म. तो. ११।६

११—पूर्व महाजनोंका भजन-पन्था क्या है ?

'सब भूतोंके प्रति दया करते हुए दृढ़ता पूर्वक निरंतर हरिनाम ग्रहण करना ही पूर्व महाजनोंका भजन-पंथा है।"

—'तत्तत् कर्मप्रवर्तन', स तो ११।६

१२—ऐकान्तिक नामाश्रित भजन-पद्धतिका क्या स्वरूप है ?

साधन-भजनकी पद्धति अनेक प्रकारकी है; किन्तु केवल नामाश्रित भजनकी पद्धति एक ही प्रकारकी है। श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुके समयसे गौड़ीय वैष्णवगण श्रीहरिदास द्वारा कहे गए भजन-प्रणालीका अवलम्बन करते आ रहे हैं। प्राचीन काल से व्रजमें निवास करनेवाले वैष्णव लोगों ने भी इसी प्रणाली द्वारा भजन किया था। कुछ दिन पूर्व श्री पुरुषोत्तम क्षेत्रमें जो सभी भजनानन्दी वैष्णव लोग थे, उन्हें भी हमने इसी भजन-प्रणालीका अवलम्बन करते हुए देखा है। असत् संग त्याग कर निरपराधपूर्वक निरंतर श्रीहरिनामका श्रवण, कीर्तन और स्मरण—यही एकमात्र ऐकान्त भजन-पद्धति है। श्री हरिभक्तिविलासके अन्तमें श्री सनातन गोस्वामी और श्री गोपाल भट्ट गोस्वामी ने इस विषयका स्पष्ट रूपसे उल्लेख किया है।"

—'प्रबोधिनी कथा' ह. चि.

१३—वैष्णव धर्म क्या है ?

"अपनी अधिकार निष्ठाके साथ निरंतर नाम संकीर्तन करना ही वैष्णव धर्मका प्रधान लक्षण है।"

—साधु निन्दा ह. चि.

१४—ज्ञान किस समय साधन भक्तिमें परिणत हो सकता है ?

"कर्मका गौण फल भुक्ति है और ज्ञानका गौण फल मुक्ति है। भक्तिको इन दोनोंके चरम फलके रूपमें जानना चाहिए। जहाँ ज्ञान भक्तिको ही चरम फलके रूपमें स्वीकार न करे, वहाँ ज्ञान सोपाधिक और भगवत् बहिर्मुख है। जहाँ ज्ञानका एकमात्र उद्देश्य भक्ति हो है, वहाँ ज्ञानको साधन भक्ति कहा जा सकता है।"

—'अवतरणिका' र: र: भा:

१५—कौनसी भक्ति जीवका नित्य धर्म है ?

"जो भक्ति मुक्तिके पहिले, मुक्तिके समय और मुक्तिके पीछे भी वर्त्तमान रहे, वह भक्ति मुक्तिसे एक पृथक नित्य तत्व है। यही भक्ति ही जीवका नित्य धर्म है। मुक्ति उसका एक गौण फल मात्र है।"

—जैव ध: छटा अध्याय

१६—कौनसा ज्ञान आराध्य है ? और कौनसा ज्ञान हेय है ?

"जो ज्ञान चरितार्थ होकर भक्तिका उदय कराता है और भक्ति प्राप्त करनेके उद्देश्य

से साधित होता है, वह ज्ञान हमारे लिए परम उपादेय और आराध्य है। किन्तु जो ज्ञान भक्तिके परम श्रेयःपथका परित्याग कर केवल स्थूल जगतके ज्ञान प्राप्ति के लिए अत्यधिक व्यस्त है, वह ज्ञान अत्यन्त हेय और अग्राह्य है।"

—'समालोचना' स: तो: ११।१०

१७—शुद्ध ज्ञान की परिपाक-अवस्था क्या है ?

"उत्तम वैष्णवोंकी भक्ति ही शुद्धज्ञानकी परिपाक-अवस्था है।"

—समालोचना,' स: तो: ११।१०

१८—किस समय उत्तमा भक्ति प्राप्त हो सकती है ?

"आर्त्त लोगोंकी कामरूप कषाय, जिज्ञासु लोगोंकी साधारण नैतिक ज्ञानाबद्धता रूप कषाय, अर्थार्थी लोगोंकी साधारण पारलौकिक स्वर्गादि प्राप्तिकी आशारूप कषाय एवं ज्ञानी लोगोंकी ब्रह्मलय और भगवत् तत्वमें अनित्यत्व बुद्धिरूप कषाय दूर होनेपर ये चारों प्रकारके व्यक्ति उत्तमा भक्तिके अधिकारी हो सकते हैं। जब तक कषाय रहे, तब तक इन सभी व्यक्तियोंकी भक्ति कर्म-ज्ञान आदि द्वारा प्रधानीभूता होती है। कषायके दूर होने पर केवला या उत्तमा भक्ति होती है।"

—र: भा: ७।१६

१९—क्या वैराग्य भक्तिका अङ्ग विशेष है ?

"जिस प्रकारसे दीपकके रहनेपर उसके पिछले भागमें छाया अवश्य रहेगी, उसी प्रकार भक्तिके रहने पर उसके पीछे-पीछे वैराग्य भी अवश्य रहेगा। किन्तु विरोधी गुणयुक्त होनेके कारण वैराग्य भक्तिके अङ्गमें ग्रहण नहीं किया जा सकता। जैसे छाया दीपकका अङ्ग नहीं है, किन्तु उसकी सहगामिनी है, वैसे ही रागाभावरूप वैराग्य रागरूपा भक्तिका सहचर मात्र है। भक्तिके साथ ज्ञान वैराग्य अवश्य ही रहेंगे, किन्तु वे उसके अङ्ग नहीं हो सकते।"

—त: सू: ३३ सू:

२०—हरिसेवा और कर्ममें क्या पार्थक्य है ?

"विशुद्ध आत्माके निरुपाधिक कार्यका नाम ही भगवत् सेवा है और जड़बद्ध आत्माके सोपाधिक कार्यका नाम ही कर्म है। जड़मुक्त होने पर जीवका कार्य निरुपाधिक हो जाता है।"

—'अवतरणिका' र: र: भा:

२१—हरिनामकी सेवाकी अपेक्षा क्या कर्मयोग श्रेष्ठ है ?

"नाम-रससिन्धुके निकट कर्मयोग एक अर्वाचीन अन्धकूपकी तरह है। नाना प्रकारकी उपासनाओंका त्याग कर नाम-परायण साधुके साथ अनन्य रूपसे अनुक्षण नाम भजन सबसे अधिक सहज है।"

—'कृष्णदास्य' स: तो: ११।६

२२—भक्तिके दो प्रकारके वर्ण क्या हैं ?

"भक्तिके दो प्रकारके वर्ण हैं—ऐश्वर्य ज्ञानयुक्ता और केवला। परमेश्वरको कृतज्ञता, भय, सम्मान आदि वृत्तियों द्वारा उपासना करने पर ऐश्वर्य ज्ञानयुक्ता भक्ति होती है। परमात्मा और ब्रह्मको छोड़कर परव्योमनाथ नारायणकी बृहत्‌रूपसे भजन करने पर अवश्य ही ऐश्वर्य ज्ञान-युक्ता भक्ति ही होगी। किन्तु सच्चिदानन्द स्वरूप कृष्ण ज्ञानमें केवल प्रेम ही देखा जाता है।"

—तः सूः ४० वां सूः

२३—वैष्णव कैसे हुआ जा सकता है ?

"वैष्णव कृपा व्यतीत वैष्णव नहीं हुआ जा सकता है।"

—'जैवधर्म' १० वां अः

२४—किस स्वरूप लक्षण द्वारा भक्तिका परिचय पाया जाता है ?

"भगवत् चरणोंमें शरणापत्ति और आनुगत्यके अतिरिक्त और किसी लक्षण द्वारा भक्तिकी व्याख्या नहीं की जा सकती।"

—'प्रयास', सः तोः १०।९

२५—नाम-साधनके अतिरिक्त अन्यान्य अङ्गों को किस प्रकारसे ग्रहण करना चाहिए ?

"हरिनामको साधन-श्रेष्ठ जानकर ऐकान्त भावसे नामाश्रय करते हुए केवलमात्र नामके साधकरूपसे ही दूसरे अङ्गोंको जानकर स्वीकार करना चाहिये।"

—'साधन', सः तोः ११।५

२६—साधनांग समूह एकमात्र मूल किस साधन के सहाय हैं ?

"हरिनाम ही एकमात्र साधन है। अन्यान्य साधनांग हरिनामके ही सहाय स्वरूपसे ग्रहणीय हैं।"

—'साधन', सः तोः ११।५

२७—क्या ऐकान्तिकी हरिभक्ति द्वारा अन्यान्य देवताओंकी अवज्ञा होती है ?

"मूलमें पानी देनेपर शाखा पल्लवादिको बल मिलता है, किन्तु शाखा पल्लवोंको पानीसे सींचनेपर कार्यकारी नहीं होता। जो व्यक्ति हरिभक्तिपरायण हैं, सभी देवता उनके बन्धु हैं; क्योंकि व्यक्ति मात्र ही भक्तका आदर करते हैं। अतएव ऐकान्तिकी हरिभक्ति द्वारा अन्यान्य देवताओंकी अवज्ञा नहीं होती, बल्कि देवताओंकी इसके द्वारा बड़ी प्रसन्नता ही होती है।"

—'उपदेश', ४, कः कः

२८—एकमात्र भागवत धर्म ही नित्य और अन्यान्य धर्म अनित्य क्यों ?

"हरिभक्ति ही शुद्ध वैष्णव धर्म, नित्य धर्म, जैवधर्म, भागवत धर्म, परमार्थ और पर धर्मके नामसे विख्यात है। बाह्य प्रवृत्तिसे जितने प्रकारके धर्म उत्पन्न हुए हैं, वे सभी नैमित्तिक हैं—नित्य नहीं हैं। निर्विशेष ब्रह्मानुसन्धानमें भी निमित्त है, अतएव वह भी नैमित्तिक है—नित्य नहीं।

जड़ विशेष अर्थात् जड़ पदार्थोंमें आबद्ध होकर जो जीव उस बन्धनसे मुक्त होनेके लिए प्रयत्न करते हैं, वे जड़ बन्धनको निमित्त कर निर्विशेष गतिके अनुसन्धान रूप नैमित्तिक धर्मका आश्रय ग्रहण करते हैं। अतएव ब्राह्म-धर्म नित्य नहीं है। जो जीव समाधि-सुखकी कामनासे पारमात्म धर्मका अवलम्बन करते हैं, वे जडीय सूक्ष्म मुक्तिको निमित्त बनाकर नैमित्तिक धर्मका अवलम्बन करते हैं। अतएव पारमात्म धर्म भी नित्य नहीं है। केवल विशुद्ध भागवत धर्म ही नित्य है।"

—'जैवधर्मः' ४ था अः

२९—वैष्णव धर्मके साथ अन्यान्य धर्मोंका क्या सम्बन्ध है ?

"वैष्णव धर्मके अतिरिक्त और कोई भी धर्म नहीं है। इसके अतिरिक्त जितने भी धर्म प्रचारित हुए हैं अथवा आगे होंगे, वे सभी वैष्णव धर्मके सोपान हैं अथवा विकृति। सोपान-स्थानीय धर्मोंका यथा योग्य आदर करना चाहिये और विकृत धर्मोंके प्रति द्वेषशून्य होकर स्वयं भक्ति-तत्वका अनुशीलन करना चाहिए।"

—'जैवधर्म', ८ वां अः

३०—सर्वकैतवमुक्त एकमात्र धर्म क्या है ?

"जगतमें एक धर्म है—उसका नाम वैष्णव धर्म है। और जितने भी प्रकारके धर्म हैं, उनमें विचित्र मतवाद, तर्क-वितर्क, परस्पर ईर्ष्या-द्वेष और अपने सम्प्रदायकी प्रतिष्ठाशा आदि प्रबल रूपसे वर्तमान हैं। जिन सभी धर्मोंमें कर्म, ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और प्रेमके परस्पर यथायोग्य सम्बन्धका निर्णय नहीं हुआ है, वे सभी धर्म कैतवपूर्ण हैं। एकमात्र पवित्र वैष्णव धर्म ही कैतवशून्य है। कपट वैष्णवोंके सिद्धान्त और चरित्रके द्वारा अकैतव वैष्णव-धर्म कदापि दूषित नहीं हो सकता।"

—'समालोचना', सः तोः ११।१०

३१—क्या दैन्य और दया भक्तिसे पृथक हैं ?

"दैन्य और दया कोई पृथक गुण नहीं हैं, बल्कि ये दोनों ही भक्तिके अन्तर्गत भाव विशेष हैं।"

—'जैवधर्मः' ८ वां अः

३२—क्या भक्ति किसी गुणकी अपेक्षा करती है ?

"नहीं, भक्ति सम्पूर्ण रूपसे निरपेक्ष है। भक्ति स्वयं सौन्दर्य है और स्वयं अलंकार है। वह किसी भी सद्गुणकी अपेक्षा नहीं रखती।"

३३—क्या भक्ति-साधन खूब कठिन और आयाससाध्य है ?

"सारग्राही धर्म अत्यन्त सरल है अर्थात् बहुत कष्टसाध्य नहीं है। इसमें दो विशेषताएँ देखी जाती हैं—अनुराग और सच्चरित्र। अनुरागके स्थान केवल दो ही हैं—

परमेश्वर और जीवात्मा। परमेश्वरके प्रति पूर्ण अनुरक्ति और जीवोंके प्रति भ्रातृवत् तुल्यानुरागकी आवश्यकता है। इसीमें ही एक प्रकार अनुराग और सच्चरित्र दोनों ही देखे जाते हैं।"

—'तत्व सूत्र', ५० वां सू:

३४—क्या कृष्ण भजनमें अवस्था-वैचित्र्य है ?

"कृष्ण भजनमें भी अनन्त प्रकारकी अवस्थायें वर्तमान हैं। पहले श्रद्धाके अंकुरसे लेकर अनन्त महाभाव तक अवस्थाओंकी सीमा नहीं है। इन सभी अवस्थाओंमें परानुशीलन और प्रत्याहार द्वारा क्रमश: उन्नति होती है।"

—'तत्व सूत्र', ४७ वां. सू:

३५—क्या भक्तिका फल मुक्ति नहीं है ?

"मुक्तिको भक्तिके फलके रूपमें चिद्-वैज्ञानिक लोग स्वीकार नहीं करते। भक्ति ही भक्तिका एकमात्र फल है। जहाँ हृदयमें भुक्ति-मुक्तिकी कामना प्रबल रहे, वहाँ शुद्ध भक्तिका सहज ही में उदय नहीं होता।"

—'चै: शि: ५।३

३६—क्या त्रिताप-निवृत्तिके लिए कृष्णके निकट प्रार्थना नहीं करनी चाहिए ?

"जन्म और मरणरूप जड़ यंत्रणा और त्रिताप-निवृत्ति कृष्णकी इच्छाके अधीन हैं। वह जीव चेष्टासे दूरीभूत नहीं हो सकती। उसके लिये प्रार्थना भी नहीं करनी चाहिये।"

—'श्री शि: स: भा: ४

३७—हरि-भक्ति किस विषयको सबकी अपेक्षा गुप्त रखती हैं ?

"भक्तिदेवी अधिकांश लोगोंको मुक्ति देकर ही संतुष्ट कर देती हैं—उच्च अधिकार देखे बिना सहज ही भक्ति नहीं देतीं।"

—'जैवधर्म', १९ वां. अ:

—जगद्गुरु ॐविष्णुपाद श्रीलभक्तिविनोद ठाकुर

———

परमाराध्य पूज्यपाद श्रीश्रील गुरुदेवके विरहोत्सव पर

प्रार्थना-कुसुमाञ्जलि

गुरुवर तिरोधान की लीला।
श्रुतिगत हुई अचानक जैसे उमगि चली नयननते धार॥
हृदयताप संताप तप्त अति, बढ़े श्वास निश्वास अपार।
व्यथित भ्रमित कम्पित सारा तन, रोम रोम गहि हाहाकार॥
भू-नभ विकल चराचर जीवन, सह न सका दुखको यह भार।
दिनकर मलिन सुधाकर विचलित, पौन रहा दबि शोक भार॥
हा केशव करुणामय केशव, वैष्णव मुख करि उठे पुकार।
दीनहीन अघ भरित मनुजका, अब को जग रखवार॥
मोह ग्रसित भवरोग त्रस्तिकी करिहै कौन सम्भार।
हम सबके तुम थे प्रतिपालक, जीवन रक्षक एक अधार॥

हा गुरुवर, हा केशव प्रभुवर।
करुणाकर उद्धारक जन-जन दुःख व्रजटारक एक सहारे।
करि अनाथ वैष्णव जनको तुम तिरोधान लहि कहाँ सिधारे॥
दीन मलिन साधनविहीन नर कहु अब कौन उबारे।
माया मोह महोदधि दुस्तर काम क्रोध जहँ ग्राह अपारे॥
इनते कौन बचावे सत्वर गहि भुज प्राण अधारे।
दर्शन नयन करें अब काके चरण शीश नित काके डारे॥
मधुर बचन काके हम सुनिके विषय विकार वेदना जारे।
कृष्णनाम अमृत भरि श्रवणन भव विषम ज्वर किमि निखारै॥
अनुगामी काके हम ह्वैहे जीवन पथमें भ्रमित विचारे।
हिय समेटि करुणाके नीरद ताप तपित तजि कहाँ पधारे॥
तव वियोग वारिधि अवगाहत बीतेगें किमि दिवस हमारे।
श्रुत उपदेश स्मरण नौका चढ़ि लगि हैं नाथ किनारे॥

बागरोदी कृष्णचन्द्र शास्त्री काव्यतीर्थ, साहित्यरत्न

सन्दर्भ-सार

(श्रीकृष्ण-सन्दर्भ २६)

द्वारका, मथुरा और वृन्दावन—ये तीन धाम श्रीकृष्णके लीला-स्थल हैं। ये तीनों ही श्रीकृष्णकी आधारशक्ति-लक्षण विभूति स्वरूप हैं। श्रुतिमें ऐसा कहा गया है—

"स भगवन् कस्मिन् प्रतिष्ठितः इति स्वे महिम्नीति साक्षात् ब्रह्म-गोपालपुरी"—

—अर्थात् "हे भगवन, वे भूमा पुरुष श्री हरि कहाँ विराजमान् हैं ? वे अपनी विभूतिमें प्रतिष्ठित हैं। गोपालपुरी साक्षात् ब्रह्म है।" —छान्दोग्य उपनिषद्में ऐसा कहा गया है। इन धामोंमें सर्वेश्वरेश्वर भगवान श्रीकृष्ण-चन्द्र निरन्तर लीला करते हैं। वहाँ उनकी लीलामें कभी भी कोई भी व्यवधान नहीं होता। पृथ्वी प्राकृत वस्तु होनेके कारण चिन्मय धामोंका स्पर्श नहीं कर सकती। अतएव पृथ्वी इन लोकोंको धारण भी नहीं कर सकती। प्रकट-लीलामें इन धामोंका कृष्ण के साथ-साथ एक स्थानसे दूसरे स्थान पर गमनागमन भी सुना जाता है। यह कैसे संभव है ? इसका उत्तर यह है कि—भगवान और धाममें भेद नहीं है। कृष्ण और कृष्णधाम अभिन्न हैं। अर्थात् कृष्णकी भाँति कृष्णधाममें भी समस्त प्रकारकी शक्तियाँ हैं। ये कृष्ण-लीलाकी अनुकूलताके लिए आवश्यकतानुसार विराटरूप धारण करना, छोटा होना, लघु होना या गुरु होना, एक स्थानसे दूसरे स्थान पर गमन करना आदि सब कुछ करते हैं। जब कृष्ण द्वारकासे मिथिला गमन करते हैं, तब द्वारका धाम मिथिला उपस्थित होकर उनमें आविष्ट हो जाते हैं। इसी प्रकार सर्वत्र समझ लेना चाहिये।

अप्रकट - लीलामें कृष्णकी सभी लीलायें हैं। वहाँ बाल्य इत्यादि भाव भी हैं। फिर भी वहाँ श्रीकृष्णका किशोर आकार (रूप) ही मुख्य है। इस किशोर आकारको आश्रय करके ही वहाँ की सारी लीलायें प्रवर्त्तित होती हैं। यहाँ तककी उक्त अप्रकट-प्रकाशमें विराजमान किशोरमूर्तिका आश्रय करके ही प्रकट-लीला प्रकाशित होती है। द्वारका, मथुरा और वृन्दावन—इन तीनों ही स्थानोंमें एक ही साथ एक ही किशोरमूर्ति श्रीकृष्ण मायिक जगतके लोगोंके नेत्रोंके अगोचर अपनी नित्य-लीला करते हुए भूभार-हरण आदि आनुषंगिक कार्योंको करते हुए भी अपने परिकरोंकी आनन्द चमत्कारिताका पोषण करनेके लिए इस जगतमें लौकिक रीतिके अनुसार ही अपना जन्म, बाल्य, पौगण्ड आदि लीलाओंको प्रकट करते हैं। वहाँ द्वारका आदि धामोंमें अपने

नित्य विराजमान कैशोर आदि विलासोंको सम्पन्न करनेके लिए यादव आदि परिकरोंके साथ दूसरे प्रकाशोंमें भी विहार करते हैं। तत्पश्चात् वसुदेवके गृहमें अवतीर्ण होकर वसुदेवके समान दूसरे प्रकाशमें । अप्रकट प्रकाशमें) विराजमान होकर व्रजके सहित व्रजराजके गृहमें भी आगमन करते हैं। व्रजराज नन्द महाराजके हृदयमें अनादिसिद्धा कृष्णविषयिनी वात्सल्य - माधुरीको नवीन करनेके लिए ही व्रजराजके गृहमें जन्मग्रहण लीलाका प्रकाश करते हैं। वहां अवस्थित रहकर गोकुलजनोंके भीतरी और बाहरी समस्त इन्द्रियोंको संपूर्ण रूपसे वशीभूत करके उनकी प्रेम-सम्पत्तिको सम्वर्द्धित कर श्रीवसुदेव आदिको परमानन्दित करने एवं भूभार-स्वरूप असुरोंका विनाश करनेके लिए मथुरामें पधारते हैं। तत्पश्चात् द्वारका धामको प्रकाशित करनेके लिए वहाँ अपनी लीला-माधुरी का परिवेशन करते हैं: तदनन्तर प्रसिद्ध लीला समूह सिद्ध होनेपर अप्रकट-लीलाका आविष्कार करते हैं; अर्थात् अपनी लीलाको अप्रकट कर देते हैं। अप्रकट कर देनेका तात्पर्य यह है कि प्रकट-लीलाको अप्रकट-लीलाके साथ एक कर देते हैं । तब वह लीला जगतके लोगोंके द्वारा देखी नहीं जाती; किन्तु लीला अनादिकाल तक चलती ही रहती है। प्रकट लीलाके कृष्ण और उनके पार्षद क्रमसे अप्रकट-लीलाके कृष्ण और उनके पार्षदोंमें मिलकर एक हो जाते हैं ।

व्रजमें कृष्णकी प्रकट - लीलाका समय ग्यारह वर्ष कालव्यापी है । जैसे श्रीमद्भागवत में कहा गया है--

ततो नन्द व्रजमितः पित्रा कंसाद्धि बिभ्यता ।
एकादश समास्तत्र गूढार्चिः सबलोऽवसत् ॥

(श्री भा. ३।२।२६)

साधारणरूपमें जगतमें दससे पन्द्रह वर्ष तककी आयुमें कैशोरावस्था हुआ करती है। किन्तु श्रीश्रीरामकृष्ण अल्पकालमें ही कौमार एवं पौगण्डावस्थाको पार कर गए थे। कृष्णका पूर्ण कैशोरकाल गोकुलमें विराजमान होता है। तत्पश्चात् मथुरा और द्वारकाकी लीला होती है। मथुराकी प्रकट-लीला द्वारकामें अनुगमन करती है।

कंसबधके पश्चात् कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके उपलक्षमें कृष्णकी यात्रा होती है । वहाँ भीष्म, द्रोण, दुर्योधन आदि एकत्रित हुए थे। कुरुक्षेत्रमें सूर्यग्रहणके समय परस्पर मिलनके समय श्रीवसुदेव महाराजजीने श्रीकुन्तीदेवीको इस प्रकार कहा था--

कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशं दिशम् ।
एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥

(श्री भा. १०।८२।२१)

अर्थात् हे भगिनि ! हम लोग कंसके अत्याचारसे विभिन्न दिशाओंमें भागकर छिपे हुए थे। अब कंसके मारे जाने पर हम पुनः अपने-अपने स्थानोंमें लौट कर आनन्दसे एकत्र वास कर रहे हैं।

तत्पश्चात् पाण्डवोंका राजसूय-यज्ञ होता है; उसीमें शिशुपालका वध होता है। तदनन्तर पाशा-खेला, दन्तवक्र वध, पाण्डवोंका वनगमन, बलदेवकी तीर्थयात्रा, कुरुपाण्डवोंका युद्ध एवं दुर्योधनवध आदि लीलायें क्रमशः होती हैं। दन्तवक्र वधके पश्चात् श्रीकृष्ण पुनः व्रजमें पधारे थे।

द्वारकाके राजवेषधारी कृष्ण वृन्दावनमें लौटकर गोपवेश धारण करते हैं। इसी वेषमें ही व्रजविहार सम्पन्न होता है। दन्तवक्र वधके पश्चात् यमुनाको पारकर कृष्ण व्रजमें पधारते हैं। गोपवेषवाले वस्त्र, अलंकार और मुरली आदि उनके साथ नहीं होती; फिर भी वृन्दावन भूमिके स्पर्शमात्रसे ही स्वरूपशक्ति गोपवेषोचित समस्त उपकरणोंसे कृष्णको सुसज्जित कर देती है। वृन्दावनमें गोपवेष होता है एवं मथुरा और द्वारका इन दोनों पुरियोंमें राजवेष होता है। व्रजमें दो मास प्रकट-लीला के पश्चात् अप्रकटलीलामें प्रवेश होता है। दो महिने प्रकटलीलाके पश्चात् श्रीकृष्ण व्रजवासियोंको विरह-आर्तिके भयसे पीड़ित देखकर जिससे पुनः उनका वियोग न हो जाय, इसलिये उनके निकट अपने गोकुल नामक धामका आविर्भाव कराते हैं। प्रकट-लीलामें भूभारहरण आदि प्रयोजन रहता है; किन्तु अप्रकटलीलामें बहिरंगजनोंका प्रवेश असम्भव है, इसलिये वहाँ विरहकी सम्भावना नहीं। इसलिये वहाँ वियोग या वियोगजनित दुःख इत्यादिकी सम्भावना भी नहीं होती। अनन्तर श्रीकृष्ण व्रजवासियोंको विरहव्याधिरहित अपने नित्य स्थानको प्रदानपूर्वक देवताओंके द्वारा स्तुति किए जाते हुए अपने अन्य प्रकाश —द्वारकामें प्रवेश कर गए।

श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्णके पुनः व्रजमें लौटनेका स्पष्ट वर्णन नहीं है। किन्तु पद्मोत्तर खण्डमें इसका स्पष्ट उल्लेख है। इसका अन्तर्निहित उद्देश्य यह है कि श्रीशुकदेवजी गोस्वामीजीने जान बूझकर बहिर्मुख लोगोंके निकट इस विषयको गुप्त रक्खा है। इसलिए कृष्णने कहा है—

"परोक्षवादा ऋषयः परोक्षं मम च प्रियम्"

अर्थात् "ऋषिगण परोक्षवादी हैं और परोक्ष मुझे प्रिय है।" श्रीकृष्णका गोकुलमें ही प्रकाशविषय प्रदर्शित हुआ है। चार प्रकार के प्रकाश हैं—ऐश्वर्यगत, कारुण्यगत, माधुर्यगत और लीलागत। ब्रह्ममोहन लीलामें ऐश्वर्यगत प्रकाश है, पूतनाको मातृगति-दानमें कारुण्यगत प्रकाश है, अर्थात् इस लीलामें अशेष दोषोंसे युक्त पूतनाके प्रति भी करुणा हुई है; व्रजस्त्रियों, पुलिन्दियों एवं व्रजके तृण-लता आदिके प्रति भी - माधुर्यगत प्रकाश है तथा मथुरामें वसुदेव-देवकी कृष्णकी जिन मधुरतम बाल्य-लीलाओंका आस्वादन न कर सके, व्रजराज-दम्पतिने उनका पूर्णतमरूपमें आस्वादन किया है। यह लीलागत प्रकाश है। इसीलिए श्रीशुकदेव गोस्वामीजीने कहा है—

अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णं ब्रह्म सनातनम् ॥
(श्रीमद्भा. १०।१४।३२)

इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या
दास्यं गतानां परदैवतेन ।
मायाश्रितानां नरदारकेण
साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥
(भा. १०।१२।११)

एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो-
गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ।
वांछन्ति यद्भवभियो मुनयो वयंच
किं ब्रह्मजन्मभिरनन्त-कथासारस्य ॥
(श्रीमद्भा. १०।४७।५८)

अर्थात् पूर्णब्रह्म श्रीकृष्ण जिनके मित्र हैं, उन नन्द आदि व्रजवासियोंके सौभाग्यकी महिमा वर्णनातीत है।

भगवान श्रीकृष्ण ज्ञानियोंके लिए ब्रह्मानन्दके मूर्तिमान अनुभव हैं, दास्यभावयुक्त भक्तोंके लिये वे उनके आराध्यदेव परम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हैं और मायामोहित विषयान्धोंके लिये वे केवल एक मनुष्य-बालक हैं। उन्हीं भगवानके साथ महान पुण्यात्मा ग्वालबाल तरह-तरहके खेल खेल रहे हैं।

इस पृथ्वी पर केवल इन गोपियोंका ही शरीर धारण करना श्रेष्ठ एवं सफल है; क्योंकि ये सर्वात्मा भगवान श्रीकृष्णके परम-प्रेममय दिव्य महाभावमें स्थित हो गई हैं। प्रेमकी यह सर्वोच्च स्थिति संसारके भयसे भीत मुमुक्षुजनोंके लिए ही नहीं, अपितु बड़े-बड़े मुनियों—मुक्त पुरुषों तथा हम (उद्धवादि) भक्तजनोंके लिए भी अभी वांछनीय ही है। हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी। सत्य है, जिन्हें भगवान श्रीकृष्णकी लीलाकथाके रसका चस्का लग गया है, उन्हें कुलीनताकी, द्विजाति आदि संस्कारोंकी, और बड़े-बड़े यज्ञ-यागोंमें दीक्षित होनेकी आवश्यकता ही क्या है ? अथवा यदि भगवानकी कथाका रस नहीं मिला, उसमें रुचि नहीं हुई, तो अनेक महाकल्पोंतक बार-बार ब्रह्मा होनेसे ही क्या लाभ है ? कृष्णप्रेम लाभ होनेपर जिस किसी भी योनिमें जन्मग्रहण करने पर वह कृष्णप्रेमी सर्वोत्तम है।

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिभूदेव श्रौती महाराज

मीराबाई और भक्तितत्व

उपस्थित सज्जनवृन्द तथा माताओं ! आजकी सभाका विषय है 'मीराबाई और भक्तितत्त्व' । इसी सम्बन्धमें विचार किया जायगा । विज्ञापन निकला, है—'मीरा जयन्ती और भक्तिवाद' । 'जयन्ती' शब्दका वास्तविक अर्थ क्या है, न जानकर ही अधिकतर इस जयन्ती शब्दका व्यवहार हो रहा है । 'जयन्ती' शब्दके व्यवहारसे क्या दोष होता है, इसकी ओर हमारी दृष्टि ही नहीं है ।

'जयन्ती' का अर्थ हम जन्म-तिथिसे करते हैं—ऐसा प्रचलन है । परन्तु 'जयन्ती' शब्द एकमात्र श्रीकृष्णचन्द्रकी जन्म-तिथिके लिए ही व्यवहृत होता है । श्रीहरिभक्ति-विलासमें इस सम्बन्धमें अनेकों प्रमाण हैं । 'शब्द-कल्पद्रुम' में जयन्ती शब्दके लिये है—'गौरी, इन्द्रपुत्री, पताकेति' मेदिनी । वृक्ष-विशेषः । एतत् साकल्यगुणाः—गरदोष-नाशित्वम्, चक्षुर्हितत्वम्, मधुरत्वं हिमत्वञ्च इति राजवल्लभः ।

योग विशेषः—"जयं पुन्यञ्च कुरुते जयंतीमिति तां विदुः । रोहिणी सहिता कृष्णाष्टमी च श्रावणेऽष्टमी । अर्धरात्रा दधश्चोर्द्ध कलयापि यदा भवेत् । जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी ।" अर्थात् जय और पुन्य प्रदान करनेसे जयन्ती नाम है । रोहिणी नक्षत्रका कृष्णाष्टमी तिथिके साथ अर्द्धरात्रिमें पहले या बादमें मिलन होता है, इसी कारण इसे कृष्ण-जयन्ती कहते हैं । ऐसा योग केवल श्रीकृष्णके जन्मकालमें ही हुआ था, इसलिए सदासे श्रीकृष्ण जन्माष्टमी-व्रत किया जाता है । अतः भगवान् श्रीकृष्णकी जन्म-तिथिको छोड़कर अन्यान्य मनुष्योंकी जन्म-तिथि पर 'जयन्ती' शब्दका प्रयोग अत्यन्त भ्रमपूर्ण और अपराधजनक है ।

हमारे देशमें भक्तिमती मीराबाईजी और उनके जीवन-चरित्रके सम्बन्धमें अनेक प्रकारकी किंवदन्तियाँ प्रचलित है । आजकल नाटकोंमें मीराजीका जो जीवन चरित्र प्रदर्शित होता है, वह बिल्कुल ही भ्रान्तिपूर्ण है ।

श्री व्योमकेश भट्टाचार्य महाशयने मीराजीके जन्म-स्थानसे संग्रहीत तथ्योंके आधारपर गवेषणापूर्ण 'मीराबाई' पुस्तक लिखी है; इससे आप सभी मीराजीके सम्बन्धमें सही-सही तथ्योंको जान सकेंगे ।

विक्रम सम्वत् १५६१, श्रावण सुदी १ को शुक्रवारके दिन कुड़की नामक ग्राममें रतनसिंह राठौरके घरमें मीराजीका जन्म हुआ था । जोधपुर राज्यके अन्तर्गत सेड़ता तहसीलमें यह ग्राम है ।

मीराजी जब बहुत छोटी बच्ची थीं, उन्हें एक स्वप्न हुआ कि छप्पन करोड़ बरातियोंको साथ लेकर श्रीकृष्ण भगवान पधारे और मीराजीके साथ उनका विवाह हो गया । तबसे मीराजीके हृदयमें यह बस गया—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।।

मीराजीके पिताजीने कुल मर्यादानुसार राणा सांगाके बड़े पुत्र भोजराजके साथ मीराजीका विवाह कर दिया। परन्तु मीराजी को इन्द्रिय सुखोंके प्रति घोर विरक्ति थी। दिन-रात कृष्ण-चिन्तन और कृष्ण-ध्यानमें समय-व्यतीत होता। विवाहके पश्चात् मीराजी पतिगृहमें जाने पर सासने बड़े आदरके साथ उन्हें पास बैठाया और कुलकी देवीको प्रणाम करनेको कहा। मीराजीने ऐसा करनेसे इन्कार कर दिया। क्योंकि वे अपना तन-मन-प्राण—सब कुछ भगवान कृष्णको अर्पण कर चुकी थीं। मस्तक तो कृष्णचरणोंमें झुक चुका था, अन्यत्र सिर झुकाना उनके लिये असम्भव था। इसलिये सासने मीराजीको स्वीकार नहीं किया। कुछ समयके बाद पतिसे वियोग हो गया। वे जब तक जीवित रहे, मीराजीके प्रति उन्होंने कभी कोई असत् व्यवहार नहीं किया। परन्तु भोजराजके भ्राता राणा विक्रमाजीत सिंहासन पर बैठते ही मीराजीके ऊपर अमानुषिक अत्याचार करने लगे। मीराजीके सौन्दर्य पर मोहित होकर उन्हें ग्रहण करनेकी कामना की; किन्तु सफलता न मिलनेसे मीराजीको मारनेके लिए षड़यन्त्र करने लगे। राणाने अपनी बहिनके हाथ विषका प्याला 'चरणामृत' कहकर मीराजीके पास भेजा। मीराजीने भगवानका नाम लेकर विषपान कर लिया। परन्तु भगवानकी कृपासे उनके ऊपर विषकी कोई क्रिया नहीं हुई। तदनन्तर राणाने एक टोकरीमें सांप रखकर ऊपरसे फूल सजाकर उसे शालग्रामके बहाने मीराजी के पास भिजवाया। मीराजीके हाथोंका स्पर्श पाते ही सांप शालग्राम बन गया। इसमें भी असफल होने पर राणाने एक बिछौनेके नीचे बड़ी-बड़ी सुईयाँ खड़ी कर ऊपरसे उसे ढककर तथा सुसज्जित कर मीराजीके पास भिजवाया। परन्तु आश्चर्यकी बात यह हुई कि वह शूलों की सेजकी जगह फूलोंकी सेजके रूपमें बदल गयी। अन्तमें राणाने जंगलसे एक शेर पकड़वा कर मंगवाया तथा उसे पिंजड़ेमें बन्द करके मीराजीके सामने लाकर पिंजड़ेका दरवाजा खुलवा दिया। शेरको सामने देखते ही मीराजी कहने लगीं—'आहा! हे श्याम-सुन्दर! क्या आज दासीको नरसिंह रूप दर्शन देने आये हो?' ऐसा कहकर प्रेमसे उसका गला पकड़ लिया। शेर शान्त हो गया और पालतू कुत्तकी तरह दुम हिलाते-हिलाते मीराजीके चरणोंमें लोट गया।

राणाने अपनी बहिन उदाबाईको मीराजी पर कड़ी दृष्टि रखनेके लिये नियुक्त कर रक्खा था। मीराजीके साथ उदाबाई का जो वार्तालाप हुआ था, वह इस प्रकार है—

उदाबाई—'मीरा! तुम साधुओंका संग छोड़ दो, नगर में तुम्हारी निन्दा हो रही है।'

मीरा—'निन्दा करने दो। इसमें मेरी कोई हानि नहीं, साधु संग ही मुझे प्रिय है।'

उदाबाई—'तुम मणियोंका हार और रत्नोंके अलङ्कार धारण करो।'

मीरा—'मणियोंका हार पहिनना मैंने छोड़ दिया है। सद्भाव और सन्तोष ही अब मेरे अलङ्कार हैं।'

उदाबाई—'तुमने माता-पिता और अपने जन्म भूमि पर कलङ्क लगा दिया है।'

मीरा—'मेरे माता-पिता धन्य हैं और जन्म भूमि धन्यातिधन्य हो गई है।'

उदाबाई—'तुम राणाकी बात मान लो, नहीं तो असहाय हो जाओगी।'

मीरा—'गिरधारीलाल ही मेरे आश्रय हैं।' मीराबाई के संगसे उदाबाईके हृदयमें भक्तिका अंकुर उदय हो गया और वह भी भक्तिमती हो गई। अब मीराजीकी निगरानीके लिये प्रहरी नियुक्त हुए। एक दिन राणाने प्रहरियों से खबर पाई कि मीराजीके मन्दिर में कोई पुरुष मीराजीसे बातचीत कर रहा है। ऐसा सम्वाद पाकर राणा मीराजीके पास गया और पूछने लगा—'अच्छा बतलाओ, तो तुम किसके साथ बातचीत कर रही थी ?' मीराजी —'मैं गिरधारीजीसे बातें कर रही थी। राणाने झूठ समझा और तलवार निकालकर मीराजीको मारना चाहा; तुरन्त सामने भयंकर नरसिंह मूर्ति दर्शन करके मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़ा।

इसके बाद राणाके राजमहलको सदाके लिये परित्याग करके मीराजी श्रीधाम वृन्दावनका दर्शन करते हुए द्वारका चली गईं, और वहीं अपने शरीरको छोड़ दिया। मीराजी के देह-त्यागके सम्बन्धमें बहुत प्रकारके मतभेद हैं। मीराजीका यह उपदेश है कि एकमात्र प्रेमसे ही भगवान मिलते हैं। फल-मूल खाना, निरामिष भोजन करना—यह सब सदाचार है। परन्तु यदि शुद्ध हरि भक्ति नहीं है, तो इस प्रकारके सदाचार-पालनका तनिक भी मूल्य नहीं है। सभी वृथा है। इनके द्वारा भगवान नहीं प्राप्त होते।

महावदान्य पतितपावन श्रीकृष्णचैतन्य महाप्रभुजीकी शिक्षा इस प्रकार है—

आदौ श्रद्धा ततः साधु संगोऽथ भजन क्रिया।
ततोऽनर्थनिवृत्तिः स्यात्ततो निष्ठा रुचिस्ततः॥
अथासक्तिस्ततो भावस्ततः प्रेमाभ्युदञ्चति।
साधकानामयं प्रेम्नः प्रादुर्भावे भवेत् क्रमः॥
(भ. र. सि. पू. वि. ४।११)

प्रथम श्रद्धा किसे कहते हैं—

'श्रद्धा' शब्दे विश्वास कहे सुदृढ़ निश्चय।
कृष्णे भक्ति कैले सर्वकर्म कृत हय॥
(चै. च. म. २२।६२)

'केवलमात्र श्रीकृष्णका भजन करनेसे ही सब कुछ करना हो जाता है'—ऐसा जिनका दृढ़ विश्वास है, वे ही भक्ति-अधिकारी हैं। अपनी कामना-पूर्तिके लिए इष्टदेवके प्रति भक्ति दिखलाना भक्ति नहीं है। प्रह्लाद-महाराजजीने इस प्रकारकी भक्तिको वणिक्-वृत्ति कहा है। इसलिए श्रद्धा हो जाने पर साधु-सङ्गमें भगवत्-भजन आरम्भ होता है। इसके बाद निष्ठा, रुचि, आसक्ति, भाव और फिर प्रेमकी प्राप्ति होती है।

समयानुसार भविष्यमें इस विषयमें और भी विस्तृतरूपसे आलोचना की जायेगी।

—त्रिदंडिस्वामी श्रीमद्भक्तिसुदेव श्रौती महाराज

पूज्यपाद श्रीमद् अद्वैतदास बाबाजी महाराजका महाप्रयाण

हम अत्यन्त विरहातुर होकर दुःखित चित्त से यह संवाद दे रहे हैं कि नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज के अनुग्रहीत और चरणाश्रित पूज्यपाद श्रीमद् अद्वैतदास बाबाजी महाराज गत १० दामोदर, १६ आश्विन, १६ अक्टूबरको शामके ७ बजे श्रीधाम नवद्वीपस्थ श्री देवानन्द गौड़ीय मठमें समितिके सेवकवृन्दको शोक-समुद्रमें निमज्जित करते हुए स्वयं श्रीहरिनामका कीर्त्तन और श्रवण करते हुए स्वधामको पधार गए। उनके विरहसे समितिके सेवक वृन्द एक महान अभावका अनुभव कर रहे हैं।

पूज्यपाद बाबाजी महाराज बहुत कालसे श्री गौड़ीय दातव्य चिकित्सालयके चिकित्सकके रूपमें नियुक्त थे। उनका पूर्वाश्रम पूर्व पाकिस्तानके अन्तर्गत फरीदपुर जिलाके कोटलिपाड़ा ग्राम था। उनका पूर्व नाम डाक्टर श्री अबलाकान्त मित्र था। वे एक सुयोग्य चिकित्सक थे। प्रायः १४-१५ वर्षके पूर्व वे चिकित्साके कार्यसे पश्चिम बंगके हुगली जिला के अन्तर्गत चुचुँड़ा शहरमें आये थे। उस समय दैवक्रमसे श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके प्रतिष्ठाता आचार्यवर्य नित्यलीलाप्रविष्ट ॐविष्णुपाद १०८ श्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजसे उनका तत्रस्थ श्री उद्धारण गौड़ीय मठमें साक्षात्कार हुआ। पूज्यपाद बाबाजी महाराज चिरकालसे ही सद्गुरुके चरणाश्रित होनेके अभिलाषी थे। उन्होंने यह सुयोग पाकर घर न लौटने का निश्चय किया और श्रील आचार्यदेवसे कृपा प्रार्थना की। एकान्त प्रार्थना और सेवा-चेष्टासे प्रसन्न होकर श्रीश्रील गुरु महाराजजी ने उनपर प्रचुर कृपा की। उसके पश्चात्से वे मठमें ही रहने लगे। उनका दीक्षित नाम श्री अद्वैतदास ब्रजवासी हुआ। उनकी प्रार्थनासे श्रीश्रीलगुरुपादपद्मने उन्हें गत २७-३-६७ को बाबाजी वेष प्रदान किया। उस समय उनका नाम श्री अद्वैतदास बाबाजी महाराज हुआ। वे सभी व्यक्तियोंकी बहुत प्रेमपूर्वक चिकित्सा करते थे।

अपने अप्रकट होनेके पूर्व दिन तक वे निष्कपट रूपसे समितिके सेवा-कार्यमें नियुक्त रहे। उनका यह आदर्श वैष्णव जगतमें परम उज्ज्वल है। हमारी श्री हरिगुरुवैष्णवोंसे यही प्रार्थना है कि बाबाजी महाराजका सेवा आदर्श हमारे जीवनमें भी प्रतिफलित हो और आखिरी श्वाँस तक निष्कपट रूपसे हम भी उनकी सेवामें नियुक्त रहें।

—जनैक विरही

———

श्री व्यास-पूजाका निमन्त्रण

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ
पो०—नवद्वीप (नदिया)
१४ जनवरी १९६९

नारायणं नमस्कृत्य नरंञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।।

व्यासकुल-श्रमणसङ्घाराध्य-वेदान्त विद्याश्रितेषु—

आगामी २२ माघ, ५ फरवरी, बुधवार, माघी कृष्ण तृतीया को श्री व्यासाभिन्न ॐ विष्णुपाद परमहंस **१०८ श्रीश्रीमद्भक्तिप्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराजकी** आविर्भाव तिथि और २४ माघ, ७ फरवरी शुक्रवार, माघी कृष्णा पंचमीको जगद्गुरु ॐ विष्णुपाद १०८ **श्रीश्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी 'प्रभुपाद'** की आविर्भाव तिथि—इन दोनों तिथियोंकी पूजाके उपलक्ष्यमें श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके समस्त मठोंमें विशेषकर मूलमठ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ नवद्वीप, श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ मथुरा और श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ चुचुड़ामें आगामी २२ माघसे २४ माघ तक तीन दिनों तक **श्रीश्रीव्यास पूजा और तदङ्गीभूत पूजा-पंचक** अर्थात् श्रीकृष्ण-पंचक, व्यास-पंचक, मध्वादि आचार्य-पंचक, सनकादि-पंचक, श्रीगुरु-पंचक और तत्त्वपञ्चककी पूजा और होम आदि अनुष्ठित होंगे । प्रतिदिन हरिकीर्तन, भागवत-पाठ, भाषण, स्तव-पाठ, श्री हरिगुरु-वैष्णव-संशन और अंजलि-प्रदान आदि इस महोत्सवके प्रधान और विशेष अङ्ग होंगे ।

धर्म-प्राण सज्जन महोदयगण उक्त शुद्धभक्तिके अनुष्ठानमें बन्धु-बांधवोंके साथ योगदान करनेसे समितिके सदस्यवर्ग परमानन्दित और उत्साहित होंगे । इस महदनुष्ठान में योगदान करनेमें असमर्थ होनेपर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवा-कार्यके प्रति सहानुभूति प्रदर्शन करने पर भी भगवत् सेवोन्मुखी सुकृति अर्जित होगी ।

वैयासक्यानुगत्याभिलाषी—
"सभ्यवृन्द"
श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

विशेष द्रष्टव्य—बुधवारको श्री व्यास-पंचकादि, श्रील आचार्यदेवके पादपद्मोंमें पुष्पांजलि, विभिन्न भाषाओंमें प्राप्त प्रबन्ध-पाठ, भाषण । बृहस्पतिवारको श्रीगुरुतत्वके सम्बन्धमें प्रवचन । शुक्रवारको श्रील प्रभुपादके श्रीपादपद्मोंमें अंजलि-प्रदान, प्रबन्धादि पाठ एवं श्रीमद्भागवतसे श्री व्यासदेवके सम्बन्धमें आलोचना ।

* श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः *

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ

तेघरिपाड़ा, पो० नवद्वीप,

(नदिया)

सादर सम्भाषणपूर्वक निवेदन—

कलियुग-पावनावतारी स्वयं भगवान् **श्रीश्रीशचीनन्दन गौरहरि** की निखिल भुवन-मङ्गलमयी **आविर्भाव तिथि-पूजा** (फाल्गुनी पूर्णिमा) के उपलक्ष्यमें **श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति** के उद्योगसे उपरोक्त ठिकानेपर आगामी १५ फाल्गुन, २७ फरवरी वृहस्पतिवार से २१ फाल्गुन, ५ मार्च, बुधवार पर्यन्त सप्ताहकालव्यापी एक **विराट महोत्सव** का अनुष्ठान होगा। इस महदनुष्ठानमें प्रतिदिन प्रवचन, कीर्त्तन, वक्तृता, इष्ट-गोष्ठी, श्रीविग्रह-सेवा, **महाप्रसाद वितरण** प्रभृति विविध भक्त्यङ्ग याजित होंगे।

इस उपलक्ष्यमें श्रीश्रीनवद्वीपधाम के अन्तर्गत नौ द्वीपोंका दर्शन तथा तत्तत्स्थान-माहात्म्य-कीर्त्तन करते हुए **सोलह-कोसकी परिक्रमा** होगी। गत वर्षकी तरह इस वर्ष भी **श्रीनृसिंहपल्ली, मामगाछी एवं श्रीधाम मायापुरमें** मध्याह्न भोगराग और प्रसाद सेवाके पश्चात् संध्याको श्रीनवद्वीपमें लौट आने की सुव्यवस्था की गई है।

धर्मप्राण सज्जन-वृन्द उक्त भक्ति-अनुष्ठान में सबान्धव योगदान कर समितिके सदस्यवर्ग को परमानन्दित एवं उत्साहित करेंगे। इस महदनुष्ठानका गुरुत्व उपलब्धि कर प्राण, अर्थ, बुद्धि और वाक्य द्वारा समितिके सेवाकार्यमें सहानुभूति प्रदर्शन कर अनुगृहीत करेंगे। इति १४ जनवरी १९६९।

शुद्धभक्त कृपालेश-प्रार्थी—

"सभ्यवृन्द"

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति

द्रष्टव्य—विशेष विवरण के लिए अथवा साहाय्य (दानादि) देनेके लिये त्रिदंडिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त वामन महाराजके निकट उपर्युक्त ठिकाने पर लिखें या भेजें।